International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET)

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

हाड़ौती की मूर्ति शिल्प की विवेचना

GEETAM PRADHAN

Assistant Professor, Ranthambhore P.G. College, Sawai Madhopur, Rajasthan, India

सार

'हाड़ौती का प्राचीन मन्दिर मूर्तिशिल्प प्रदेश के अन्य समकालीन मूर्तिशिल्प की तुलना में अधिक बेहतर और विशिष्ट है। तकनीक, सौन्दर्य और बौद्धिक स्तर पर हाड़ौती का शिल्प अपने समय में श्रेष्ठ था और प्रदेश में दूर-दूर तक इसका प्रभाव था।' यह जानकारी भारत सरकार के सांस्कृतिक मंत्रालय की ओर से सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा प्रदत एक परियोजना के अन्त्रतगत हाड़ौती क्षेत्र के प्रमुख मन्दिर मूर्तिशिल्प की अध्ययन रिपोर्ट में सामने आई है।

पिछले दो साल से चल रहा यह तथ्यात्मक अध्ययन **वरिष्ठ पत्रकार राहुल सेन** द्वारा किया गया है। इसके तहत प्राचीन ग्रंथों में दिए गए प्रतिमा-लक्षणों से हाड़ौती के मूर्तिशिल्प का मिलान कर इसकी तकनीकी श्रेष्ठता प्रमाणित हुई है। सौन्दर्य से ओत-प्रोत उस काल में नए आयाम स्थापित करने वाली अनेक मूर्तियां केवल हाड़ौती में ही देखी जा सकती है। इस श्रेष्ठता का प्रमुख कारण यहां का विशिष्ट शिल्प कौशल, उच्च बौद्धिक स्तर और विशेष सौन्दर्य दृष्टि था। यह तथ्य यहां शासन करने वाले राजवंशों के प्रभाव, सम्पन्न समाजिक व धार्मिक स्थिति के अध्ययन से प्रमाणित होते हैं।

दक्षिण पूर्वी राजस्थान के कोटा, बूंदी, झालावाड़ और बारां जिलों वाला हाड़ौती क्षेत्र वह स्थल है जो अपनी पुरा-सामग्री और मूर्तिकला के विशिष्ट उदाहरण समेटे हुए है। हाड़ौती का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जो मन्दिर मूर्तिशिल्प परम्परा का साक्षी न हो। मूर्तिशिल्प परम्परा और इतिहास यहां इस तरह गुंथे हैं, जैसे जीव व शरीर। इनमें कौन जीव है और कौन शरीर कहना कठिन है।

यहां मन्दिर और मूर्तियां क्षेत्रीय परम्परा के साथ मध्यकालीन विशेषताओं से युक्त हैं, साथ ही वास्तुशास्त्रीय प्रतिमा-विज्ञान के लक्षणों का विकसित रूप भी दर्शाती हैं। देव मूर्तियों के साथ इस क्षेत्र में लोक जीवन पर भी बहुत सी मूर्तियों का निर्माण हुआ है और इसका प्रभाव शेष भारत पर भी पड़ा है और भारतीय मूर्ति शिल्प में यह हाड़ौती क्षेत्र का विशेष योगदान माना जा सकता है।

राहुल सेन की अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार प्राचीन हाड़ौती मात्र एक भू-खण्ड नहीं माना गया वरन हाड़ौती के हाड़ौती होने के अर्थ में ही परम्परा व भारतीय संस्कार निहित माने जाते रहे है। संसार की किसी भी संस्कृति में शायद ही इतनी सहनशीलता हो, जितनी हाड़ौती की सौहार्द परम्परा में पाई जाती है। हाड़ौती में शैव सम्प्रदाय की प्रधानता होते हुए भी यहां शैव, वैष्णव, शाक्त सहित विभिन्न वर्गों सहित जैन व बौद्ध धर्म के सहअस्तिव के मूर्त उदाहरण देखे जा सकते हैं। यह सुखद स्थिति के लिए हाड़ौती उस काल के पारस्परिक सौहार्द सम्बन्धों की दृष्टि से दूर-दूर तक जाना जाता था। हाड़ौती की मूर्तिकला परम्परा मालवा व देश की शिल्पकला में निरंतर अपना महत्वपूर्ण योगदान देती रही। इस युग में अनेक धर्मों व मतों के मंदिरों सहित देव मूर्तियों, अवतारवाद की मूर्तियों का निर्माण होता गया। इसी के चलते हाड़ौती क्षेत्र की मूर्तिशिल्प परम्परा का योगदान मध्यभारत की गौरवशाली संस्कृति तथा कला के चरम उत्कर्ष का साक्षी रहा।

परिचय

असाधारण तकनीकी प्रौढ़ता

यह कहा जा सकता है कि, 9वीं से 13वीं शताब्दी ई. के बीच हाड़ौती के मन्दिर मूर्ति शिल्प तकनीक पर विभिन्न प्रभावों की विशेषता रही। तकनीक को प्रभावित करने वाले तत्वों में सर्वाधिक प्रबल पक्ष शिल्पियों की मनोदशा और उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होते कौशल को माना जा सकता है। इसमें यहां कला से सम्बन्धित मूल साधन-स्त्रोतों की सहज उपलब्धि व निर्बाध व्यापारिक मार्ग सहित के सम्पन्न व कलाग्रही श्रेष्ठिवर्ग और शिक्षित समाज के समर्थन की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही।

शिल्पियों ने देवी-देवताओं के विभिन्न स्वरूपों की शास्त्र सम्मत परिकल्पना कर उन्हें मूर्तियों के माध्यम से जीवन्त किया। इसी के साथ विभिन्न समय काल की मूर्तियों के तकनीक तकनीकी पक्ष में दर्शित परिवर्तन से यह स्पष्ट परिलक्षित है कि हाड़ौती के शिल्पियों ने नवाचार के चलते अनेक साहसिक प्रयोग भी किए। इस दौरान सुधरे और निखरे शिल्पों में असाधारण तकनीकी प्रौढ़ता नजर आती है।

राजस्थान ही क्या देश के अन्य क्षेत्रों के मूर्तिशिल्प में भी तकनीकी दक्षता की कमी नहीं, सौन्दर्य भी भरपूर है, व्यंजना की भी असीम क्षमता है, व्यापक प्रभाव की भी वह धनी हैं, किन्तु यह समस्त प्रवृतियां एक स्थान पर एकत्र कम ही मिलती हैं और इस मात्रा में तो कहीं नहीं जिस मात्रा में हाड़ौती शिल्प में पाई जाती है। [1]

सौन्दर्य से ओत-प्रोत शिल्प

हाड़ौती के शिल्पकारों ने मन्दिर मूर्ति शिल्प के सौन्दर्य अंकन में एक इतिहास रचा है। शिल्पकारों ने जहां एक ओर प्रतिमा निर्माण

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |
|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||
| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

के नियमों को आत्मसात किया और तकनीकी पक्ष को प्रबल रखा वहीं दूसरी ओर सौन्दर्य पक्ष के नए मानदण्ड कायम किए। सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते समय वस्त्र व आभूषणों के नवीनतम व सूक्ष्म अंकन को जीवन्तता प्रदान की।
इसके साथ मन्दिर के प्रत्येक भाग चाहे वो उदम्बर हो या शिखर कलश, तोरण हो या द्वार शाखाएं, दीवारों के अलंकार हो या छत का शिल्पालेखन, थरों, चबूतरों, धरणियों, यज्ञ कुण्डों, वेदिकाओं, स्तम्भों के सौन्दर्य अलंकरण में भी अपनी सौन्दर्य दृष्टि को सजीव किया। यहां के शिल्पियों ने सभी सौन्दर्य बिन्दुओं का संयोजन कर हाड़ौती के मन्दिर मूर्ति शिल्प सौन्दर्य को अमर बना दिया।

हाड़ौती की उच्च बौद्धिक स्थिति

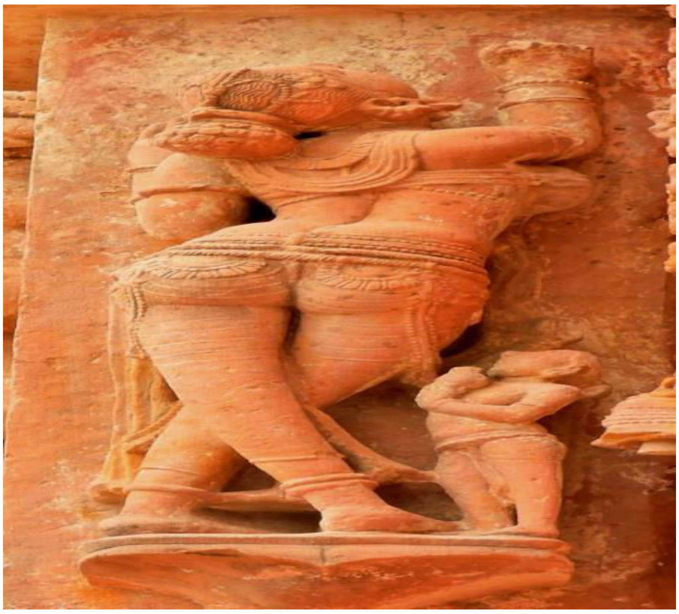

हाड़ौती की उच्च बौद्धिक स्थिति का प्रभाव मन्दिर मूर्तिशिल्प में साकार होता रहा और हाड़ौती के शिल्प कौशल ने इतिहास रच दिया। विभिन्न कालखण्डों से गुजरते हुए हाड़ौती के मूर्तिशिल्प ने कई शासकों के नेतृत्व में उसने परिपक्वता को प्राप्त किया। शासन कालों में होने वाले परिवर्तनों सहित ही शिल्पी के साथ तत्कालीन समाज के बौद्धिक चिन्तन और विकास की यात्रा निरन्तर गतिशील रही।

हाड़ौती के उपलब्ध इतिहास, पुरा साक्ष्य तथा यहां से प्राप्त शिलालेखों पर उत्कीर्ण वर्णन, वहां का सजीव रचना कौशल तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में बौद्धिक चिन्तन व विकास यहां की स्थिति को प्रमाणित करता है। उस समय रचे गए शिल्प ग्रंथ आज भी शिल्प कला के प्रमाणिक दस्तावेज तो हैं ही, आज के सन्दर्भ में शिल्प रचना के लिए उपयोगी भी हैं।
बौद्धिकता का प्रभाव ना केवल हाड़ौती के हिन्दु मन्दिर मूर्तिशिल्प पर अपनी छाप दिखाता हुआ हमारे सामने है वरन् जैन और बौद्ध मूर्ति शिल्प भी बौद्धिक प्रभाव को चरितार्थ करते हैं। देव मूर्तियों के साथ जन सामान्य पर केन्द्रित शिल्प रचनाएं बौद्धिकता की गाथाएं गुनगुनाती हैं।

यहां के शिल्प में आश्चर्यजनक रूप से प्रकृति के आधार पंचतत्व को आकार दिया गया। प्रज्वलित अग्नि, जल की सबसे छोटी मात्रा बूंद से लेकर नदी और अपार समुद्र तक का भान कराया गया है। नदियों की मानवाकृतियां, आकाश में बहती हुई वायु तथा पृथ्वी तक को शिल्पियों ने मूर्तियों के रूप में प्रस्तुत किया। प्रकृति से सम्बद्ध वनस्पति का अंकन भी प्रचुरता से हुआ।
पशु-पक्षियों के अंकन में शिल्पाचार्यों व शिल्पियों ने अपनी कल्पना की उड़ान को सारा आकाश दिया। मानवरूप में गरुड़ का अंकन हो या मानवरूपी मूषक, हुमा जैसे काल्पनिक पक्षी की बात हो या विभिन्न जीवों से मिलकर बनाए गए 'अललपंख' जैसे जीव की अद्‌भुत रचना हाड़ौती के मूर्तिशिल्प को एक अलग आयाम प्रदान करता है।

सामाजिक पक्ष उसकी जीवन शक्ति थी

हाड़ौती के मन्दिर मूर्तिशिल्प में जहां एक ओर मूर्तिशिल्प का धार्मिक पक्ष शिल्प का जीवन था, तो सामाजिक पक्ष उसकी जीवन शक्ति थी। मन्दिर मूर्ति निर्माण कार्य से समाज के प्रत्येक पक्ष का किसी ना किसी रूप में जुड़ाव भी रहा और योगदान भी। शिल्प निर्माण में लगने वाले कौशल, धन व सामग्री की व्यवस्था, श्रम की पूर्ति या शिल्प अंकन के विषयों के लिए समाज का योगदान महत्वपूर्ण

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |
|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||
| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

था।

हाड़ौती में निर्मित मन्दिर मूर्ति शिल्प में ऐसी रचनाएं भी प्रचुर मात्रा में हैं, जो सामान्य रूप से श्रृंगारिक या देव पूजन से सम्बन्धित नहीं हैं। इनमें सामान्य ज्ञान व सामाजिक लोकाचार के शिक्षण हेतु निर्मित शिल्प भी हैं तो गूढ़ विषयों से सम्बन्धित शिल्प रचनाएं भी। प्राप्त शिल्पों के अध्ययन से उनके तत्कालीन शिक्षण से सम्बद्ध होने का स्पष्ट भान होता है।

विषयों की गम्भीरता के अनुसार शिक्षण केन्द्रों के रूप में सामान्य पाठशालाएं, गुरुकुल व मन्दिरों को चिन्हित या निर्धारित किया जाता था। इसके साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि मन्दिर मूर्तिशिल्प का तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था से गहन जुड़ाव था। [2]

हाड़ौती का प्रभाव दूर-दूर तक तक

हाड़ौती के शिल्प का राजस्थान के कुछ अन्य क्षेत्रों के शिल्प से अनेकानेक क्षेत्रों में साम्यभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसके समर्थन में विभिन्न तथ्य स्वयं प्रस्तुत होने लगते हैं। राजस्थान के हाड़ौती जैसे एक कोने से प्राप्त मन्दिर मूर्ति शिल्प की समानता जब राज्य के दूसरे कोने में वागड़ के मूर्तिशिल्प में मिलती है तो उसके प्रभाव व साम्य को स्वीकार करना ही पड़ता है। हाड़ौती शिल्प से सम्बद्धता के लिए पड़ौसी मेवाड़ सहित सुदूर मारवाड़ व वागड़ क्षेत्र के प्रतिनिधि मन्दिरों के शिल्प देखे जा सकते हैं। यह सभी अपने मूर्तिशिल्प व स्थापत्य के लिए प्रसिद्ध हैं। सभी सम्बद्ध मन्दिरों में स्थित प्रमुख देव मूर्तियों सहित स्थापत्य, अलंकरण, नारी सौन्दर्य, धार्मिक व सामाजिक जीवन से जुड़े प्रतिनिधि शिल्पों की तुलना से स्थिति स्पष्ट होती है। इससे यह भी सामने आया कि विवेच्य काल में हाड़ौती सहित राजस्थान के मूर्तिशिल्प ने अपनी स्वतन्त्र शैली रच डाली। यह शैली शिल्प के गठन से लेकर तकनीक व सौन्दर्य की अत्र्तदृष्टि तक में अनुभूत होती है। इसका प्रमुख कारण शासकों, श्रेष्ठिवर्ग व शिल्प स्थापकों की विचारधारा ही प्रतीत होती है।

राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में स्थापित मूर्तिशिल्प का हाड़ौती से सम्बन्ध की विवेचना करते हुए यह तथ्य स्पष्ट होते है कि शिल्प शास्त्रों में वर्णित प्रतिमा-लक्षण व निर्देशों की पालना करते हुए भी शिल्प में किए जाने वाले नवीन प्रयोगों ने हाड़ौती के मूर्तिशिल्प की पृथक पहचान स्थापित कर दी। चित्तौडगढ़ जिले के मेनाल व भीलवाड़ा के बिजोलिया सहित राजस्थान के अनेक मन्दिरों के मूतिशिल्प पर हाड़ौती शिल्प परम्परा का प्रभाव है। रिपोर्ट में विभिन्न स्तर पर स्पष्ट किया गया है कि हाड़ौती का मूर्तिशिल्प राजस्थान के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उन्नत और विशिष्ट है।

विचार-विमर्श

राजस्थान विरासतों की ऐसी अनुपम भूमि है जहाँ विरासतें मूक और जड़ नहीं है बल्कि वे वाचाल और जीवन्त है। वे केवल इतिहास का आख्यान नहीं करती बल्कि वे अपने आप में गौरव की आख्याता है। यहाँ के नगर, दुर्ग, मन्दिर, प्रासाद, मूर्तियाँ, स्थापत्य तथा लोक के आलोक की परम्पराएँ अपने आप में अद्वितीय है, जिनका अपना सुदीर्घ इतिहास है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि राजस्थान के विभिन्न जिलो में अवस्थित इन विरासतों का अध्ययन हो रहा है तथा बीते समय में विद्वानों ने अपना जीवन लगाकर यह अध्ययन किया है लेकिन अभी भी इस महान विरासत के अनेक अध्याय उजाकर होना शेष है। इसी श्रृंखला में आज के राजस्थान में एक महत्त्वपूर्ण नाम डॉ. श्री प्रभात कुमार सिंघल का है जिन्होंने अपने सीमित संसाधनों के बीच हाड़ौती अंचल की महत्त्वपूर्ण पुराकला निधि का अध्ययन करने और उसके अचिह्ने पक्षों को उजागर करने में अपना जीवन लगाया है। डॉ. प्रभात कुमार सिंघल राजस्थान सरकार के जनसम्पर्क विभाग में संयुक्त निदेशक रहे है। उन्होंने इतिहास में पीएच.डी. प्राप्त की। अभी तक उनकी 3 दर्जन पुस्तकें पर्यटन, संस्कृति पर प्रकाशित हुई है। भारत के अनेक समाचार पत्रों में उनके विद्वतापूर्ण आलेख प्रकाशित हुए है। उन्हें समय-समय पर ऐसे प्रकाशन और उल्लेखनीय कार्यो के लिए विभिन्न सम्मानों से भी समलंकृत किया गया है।[3]

हाल ही में उनकी सद्यः प्रकाशित सचित्र कृति राजस्थान-हाड़ौती पुरातत्त्व-एक अध्ययन प्रकाशित हुई है। हाड़ौती मूलतः राजस्थान के दक्षिणी-पश्चिम भाग का एक ऐसा संभाग है जिसमें कोटा, बूंदी, बारां और झालावाड़ जिले आते हैं। हाड़ा राजपूतों के प्राधान्य और शासन के लिए इस भू-भाग को हाड़ौती कहा गया। यह भू-भाग अपने में प्रागैतिहास से लेकर गुप्त, परमार, औलिंकर व प्रतिहार युग तक की कला संस्कृति को छिपाए हुए है। यहाँ यह भी तथ्य उल्लेखनीय होगा कि हाड़ौती के राज्य इतिहास, चित्रांकन परम्परा और लोक संस्कृति, बोली पर तो अनेक विद्वानों ने काफी कार्य किया परन्तु इस भाग के कला, पुरातत्त्व, शिल्प व मन्दिर स्थापत्य पर कार्य नगण्य रहा है, परन्तु इस अचिह्ने पक्ष पर मेरी दृष्टि में डॉ. सिंघल ने यह सद्कार्य पहली बार बड़ी खोजबीन और शोध के साथ किया है। शोधकर्त्ता और पर्यटक इस कृति को आधार बनाकर हाड़ौती के कला शिल्प की वृहद जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते है। कोटा, बूंदी, बारां, झालावाड़ के पुरातत्त्व स्थल दर्शनीय भी है और पर्यटन के बेहद नयनाभिराम केन्द्र भी। हाड़ौती के प्राकृतिक भूगोल और हरितिमा के बीच व शिखर पर बने इन बेमिसाल स्थलों का दर्शन मानव की सहज मात्रा का क्रमिक विकास दर्शाता है। क्षेत्र के दुर्ग, महल, प्रासाद, मन्दिर, बाग-बगीचे, सरोवर, नदियाँ, प्राकृतिक स्थल, शैलचित्र सभी मनोहारी है। क्षेत्र के संग्रहालयों में रखे शिल्पखण्ड, शिलालेख, चित्र, मूर्तियाँ इस भू-भाग की उन्नत कला की अनुपम थाती है।

ये बानगी है हाड़ौती से जुड़ी कुछ महत्त्वपूर्ण कला विरासतों की जिन पर डॉ. प्रभात कुमार सिंघल ने घूम-घूम कर उन्हें देखा, परखा

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |
|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||
| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

तथा प्राणप्रण से जीया है। उन्होंने इस पुस्तक को केवल लिखा ही नहीं वरन् उन्होंने इसमें इतिहास ओर कला पुरातत्त्व संस्कृति की धारा को समवेत रूप में प्रवाहमान भी किया है।

17 अध्यायों में विभाजित इस कृति में कोटा के राजकीय संग्रहालय की विकास यात्रा का सिंहावलोकन प्रस्तुत कर डॉ. सिंघल ने रेखांकित किया कि मूर्तिकला की दृष्टि से यह संग्रहालय इतना सम्पन्न है कि इसका स्थान भारत प्रसिद्ध मथुरा संग्रहालय के बाद आता है। 1945-46 ई. से कोटा में संग्रहालय का आरम्भ हुआ। प्रख्यात विद्वान ए.एस. अल्तेकर, एम. दीक्षित तथा इतिहासकार मथुरालाल शर्मा ने इसे अपने अथक परिश्रम से संजोया। इस संग्रहालय में अलभ्य मूर्तियाँ, शिलालेख, सिक्के और चित्रों का सुन्दर संग्रह है। संग्रहालय में प्राचीन लेख बड़वा के यूप स्तम्भ है जो भारत की प्राचीन ब्राह्मी लिपि में विक्रम 195 (ई0 238) के है। संग्रहालय में कुल 750 के लगभग दुर्लभ देव मूर्तियाँ शोध की दृष्टि से नैत्ररंजक हैं। इनमें गुप्तकालीन मूर्ति ‘झल्लरीवादक’ बड़ी प्रभावोत्पादक है। इस मू्र्ति का शिल्प अद्भुत है। निरन्तर 18वीं सदी तक की देव, देवी, दिक्पाल, ग्रह, अवतारवाद की मूर्तियों का यहाँ अच्छा संग्रह है। संग्रहालय में आहत से लेकर रियासत कालीन सिक्कों का सुन्दर संग्रह है। हस्तलिखित ग्रन्थों पर शोध करने वाले विद्वानों के हेतु यह संग्रहालय अत्यन्त उपयोगी है। इन ग्रन्थों में राज्यकालीन अनेक विद्वानों द्वारा लिखित धार्मिक सचित्र ग्रन्थ है। इन सभी का वर्णन विद्वान लेखन ने विस्तार से किया है। वर्तमान कोटा का यह संग्रहालय राज्यकालीन बृजविलास भवन में है जो पर्यटन की दृष्टि से भी सुन्दर
है।

इसी संग्रहालय की विभिन्न दीर्घाओं में प्रदर्शित कला सामग्री का वर्णन विवेच्य कृति में डॉ. सिंघल ने विस्तार से किया है। प्राग-पुरातत्त्व दीर्घा में हाड़ौती क्षेत्र में लाखों वर्षों पूर्व विचरण कर रहे आदिमानव के प्रयोग में लाये गये औजारों का प्रदर्शन किया गया है। लेखक ने इन औजारों और तत्कालीन मानव के जनजीवन में प्रयोग किये गये आभूषणों का भी सुबोध रूप से परिचय देकर बहुत उत्तम कार्य किया है। ये सभी सामग्री कोटा एवं बूंदी जिले से प्राप्त विभिन्न स्थलों की है।

उक्त संग्रहालय में शैव मूर्तिकला दीर्घा पर लेखक ने विस्तार से विमर्श किया है। कोटा क्षेत्र में पूर्व मध्यकाल से ही शैव मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण की परम्परा रही है। लेखक ने विवेच्य कोटा संग्रहालय में प्रदर्शित शैव धर्म की प्राप्त सुन्दर मूर्तियाँ जो विभिन्न भाव भगिमांओं, अलंकरणों से युक्त है का जीवन्त वर्णन किया है। शिव की मुद्राओं, सपत्निक, शिव परिवार के गौरी, गणेश, रूद्र सहित दिक्पाल, नवग्रह, सपत्निक गणेश, शैवाचार्य आदि का परिचयात्मक विवरण दिया है।

इसी क्रम में वैष्णव मूर्तिकला दीर्घा का भी जीवन्त वर्णन रेखांकित किया गया है। लेखक ने विवेच्य धर्म पर प्रस्तुत अध्याय में खोजी दृष्टि डाली है। इस दीर्घा में बाड़ोली से अवाप्त शेषशायी विष्णु की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर तथा नयनाभिराम है। इस मूर्ति के अलंकरण व मुद्रा शास्त्रोक्त विधि सम्मत है। इसे न्यूयार्क में प्रदर्शित किया जा चुका है। वैष्णव मूर्तियों में लेखक ने विष्णु के विभिन्न स्वरूपों की भी चर्चा की है। संग्रहालय में राज्यकालीन अस्त्र-शस्त्र और परिधान की दीर्घा पर भी कृति में सविस्तार से सचित्र परिचय दिया गया है। तत्कालीन राजसी जीवन के आभूषण, वस्त्र विधान, दैनिक जीवनोपयोगी वस्तुओं पर भी लेखक ने विस्तार पूर्वक विवरण लिखा है।[4]

कोटा का चित्रांकन परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान राष्ट्रीय स्तर का है। यहाँ की कोटा चित्र शैली दीर्घा में बूंदी, कोटा शैली को प्रस्तुत किया गया है। नायिका, शिकार, लीला पर कृति में सारगर्भित विवेचना की गई है। संग्रहालय में क्षेत्र से प्राप्त जैन मूर्ति कला पर सम्यक जानकारी दी गई है।

एक अध्याय में लेखक ने कोटा जिले के पुरातत्त्व स्थलों कंसुवा, जगमन्दिर, केसर खाँ, डोकर खाँ का मकबरा, चन्द्रसेल शिव मठ, गेपरनाथ, आलनिया के प्रागैतिहासिक शैलचित्र, आवां के बद्रीनाथ, पार्श्वनाथ मन्दिर, मानस गांव का शिव मन्दिर, बूढ़ादीत, क्षारबाग की कलात्मक छतरियाँ पर सुन्दर तथा विस्तार से जानकारी दी गई है ताकि पर्यटक, इतिहास के इन स्थलों का इतिवृत्त जान सके। ये स्थल विवेच्य जिले के गौरव है।

कोटा राजपरिवार के राव माधोसिंह संग्रहालय में प्रदर्शित राजसी वस्तुओं का सम्यक परिचय भी प्रस्तुत कृति में समाहित है। इसमें दरबार हाल में प्रदर्शित राजसी जीवन की शाही विविध वस्तुओं का सुन्दर प्रदर्शन है।

एक अन्य अध्याय में राजकीय संग्रहालय बूंदी का विशद वर्णन है। लेखक ने बूंदी क्षेत्र से प्राप्त दुर्लभ देव मूर्तियों का बड़ा जीवन्त और रोचक वर्णन किया है। विवेच्य संग्रहालय में गणेश, विष्णु स्वरूप दामोदर, ऋषिकेश, शिव अन्धकासुर, हरिहर, देवी शक्ति के विभिन्न स्वरूप, मातृका आदि का वर्णन उनके अलंकरणों सहित किया है। संग्ररहालय की चित्रकला दीर्घा पर विशिष्ट विर्मश लेखक ने किया है। बूंदी शैली की विशेषताओं को बड़े गहन और सुक्ष्म अध्ययन से लिखने में डॉ. सिंघल ने मानो अपने आपको उसमें रमा दिया है। कृष्णलीला, शिव पार्वती, जलचर, प्रकृति, बारहमासा, राजपुरूषों की भंगिमायें, शिकार, वन सम्पदा जैसे चित्र बूंदी की कला थाती है।

एक अध्याय में बूंदी जिले के पुरातत्व स्थलों, विश्वविश्रुत चित्रशाला, चौरासी खम्भों की छतरी, रानी जी की बावड़ी, कमलेश्वर महादेव मन्दिर, सुख महल, कवांलजी मन्दिर, शैलचित्र निधि, केशवराय पाटन, कुण्ड, तारागढ़, शिकार बुर्ज, जैतसागर, इन्द्रगढ़ की लोकदेवी बीजासन माता का सुन्दर वर्णन है। बूंदी की चित्रशाला विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ की बूंदी शैली का पृथक निजस्व संसार प्रसिद्ध है। 84 खम्भों की छतरी राजस्थान के स्थापत्य की अनुपम कृति है। तारागढ़ का किला उतंग शिखर पर बड़ा भव्य बना है। लेखक ने इनकी महत्ता पर विशद प्रकाश डालकर इन्हें पर्यटन एवं पुरातत्त्व से जोड़ने का महनीय लेखन कार्य किया है। बूंदी क्षेत्र के शैलचित्रों का भारतीय शैलचित्र संसार में अपना वैशिष्ठ्य है। क्षेत्र में अनेक प्रासाद ऐसे है जिनकी बुर्जे से प्राकृतिक दृश्य को निहारा जाता है।

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

अगला अध्याय बारां जिला मुख्यालय के राजकीय पुरातत्त्व संग्रहालय की कला निधियों पर केंद्रित है। इस संग्रहालय की स्थापना वर्ष (2020 ई.) की है। इसमें इस क्षेत्र से प्राप्त 39 दुर्लभ मूर्तियाँ, 42 लघु चित्र, 84 अस्त्र-शस्त्र, 148 लोक सज्जा की कला निधियाँ है जिनका अवलोकन एवं अध्ययन कर विवेच्य क्षेत्र के साथ राजस्थान की परम्परागत कला, संस्कृति, पुरातत्त्व को सहजता से समझा जा सकता है।

बारां जिले के पुरातत्व स्थल पर जानकारी अभी तक अल्पज्ञात सी थी। लेखक ने प्रस्तुत कृति में जिले के पुरास्थल, रामगढ़ किला, भण्डदेवरा, बांसथूनी, खण्डेला, शाहबाद, किला, शेरगढ़ दुर्ग, अटरू के मन्दिर समूह, बिछालस मन्दिर, बड़ोरा, बड़वा आदि पुरातत्त्व में नवीन आयाम स्थापित किये है। जिले के दर्शनीय स्थलों कपिलधारा, सीताबाड़ी, सोरसन पर भी उत्तम जानकारी है। कृति का एक अध्याय झालावाड़ जिले की पुरासम्पदा, पर्यटन स्थलों की महिमा पर केन्द्रित है। झालावाड़ का संग्रहालय मूर्तिकला, सिक्कों, शिलालेखों, चित्रों का नायाब खजाना है। यहाँ प्रदर्शित सचित्र अवतार चरित्र ग्रन्थ राजस्थान की पोथी चित्रण परम्परा में विशिष्ठ है। संग्रहालय की शिव पार्वती की अर्द्धनारीश्वर मूर्ति एवं नवग्रह चामुण्डा मूर्ति भारत की विशिष्ठ दुर्लभ मूर्तियों में से एक है। आहत मुद्राओं से लेकर 19वीं सदी की मुद्राएँ यहाँ है। 5वीं से 18वीं सदी के शिलालेखों का संग्रह भी देखने योग्य है। संग्रहालय में अनेक दीर्घाएँ है जिनमें विभिन्न वस्तुएँ प्रदर्शित है।[5]
विद्वान लेखक ने झालावाड़ जिले के विभिन्न पुरा स्थलों का नैत्ररंजक परिचय कृति में लिखा है। जलदुर्ग गागरोन, कोलवी बौद्ध गुफा, सूर्य मन्दिर, चन्द्रभागा मन्दिर, दलहनपुर मठ, चाँदखेड़ी आदि पर जीवन रोचक वर्णन कृति में किया है। ये स्थल पर्यटन और भारतीय संस्कृति के सुन्दर स्थल है।

कृति का अन्तिम अध्याय हाड़ौती की संस्कृति पर केन्द्रित है। यहाँ की लोकलुभावन संस्कृति के त्यौहार अद्‌भुत है। बूंदी की चित्रशैली का सम्यक परिचय विवेचन सहित अध्याय में है। वेशभूषा, आभूषण, क्षेत्र की जनजातियों के जीवन परिवेश, सामाजिक स्थिति पर कृति में गहनता से विमर्श किया गया है। क्षेत्र के बारां जिले में सहरिया आदिवासी क्षेत्र पर लेखक ने विशद जानकारी दी है। इस आदिवासी जनजाति की संस्कृति पर शोध की संभावना का द्वार कृति में खोल दिया गया है जो लेखक की सुक्ष्म दृष्टि को दर्शाता है। ‘‘हाड़ौती पुरातत्त्व एक अध्ययन’’ नामक इस कृति को लिखने में मानो लेखक ने अपना पूरा मन रमा दिया है। कृति के पन्ने-पन्ने में इस बात की झलक मिलती है। कृति में अनेक ऐसे पक्ष है जो पहली बार उभर कर अनावृत हुए है जिस और अभी तक ध्यान ही नहीं गया था। लेखक डॉ. प्रभात कुमार सिंघल ने कृति में एक अर्न्तअनुशासिक दृष्टि से क्षेत्र की विरासतों का ऐसा सुन्दर अध्ययन किया है जिसमें केवल इतिहास नहीं है बल्कि उस इतिहास के अन्तर में सिमटी हुई पुरा लोक संस्कृति की भी जानकारी है जो सामान्य जन के जिये जानना बहुत आवश्यक है।
यहाँ यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय होगा कि इतिहास की गंगा और यमुना तो दृश्यमान होती है किन्तु कला संस्कृति की अन्तःसलिला के दर्शन हम नहीं कर पाते। लेखक को मैं हृदय से इसलिए साधुवाद देता हूँ क्योंकि उन्होंने हाड़ौती की पुराकला संस्कृति की इस सांस्कृतिक सरस्वती को हमारी आँखों के समक्ष दृश्यमान किया है। उनका यह आधुनिक भागीरथी प्रयास कभी थमे नहीं, यही हार्दिक शुभकामना हम सभी को करनी चाहिये।

परिणाम

राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भू-भाग में स्थित हाड़ौती अंचल अपनी विषिष्ट ऐतिहासिक, लोक-सांस्कृतिक और भौगोलिक पहचान के कारण देषभर में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रषासनिक दृष्टि से हाड़ौती अंचल के अन्तर्गत कोटा, बूंदी, बारां एवं झालावाड़ जिले आते हैं। इस अंचल का प्राचीन स्थापत्य, इतिहास, साहित्य, धार्मिक परम्परा, शौर्य, पराक्रम, भक्ति एवं त्याग की घटनाएं इतनी जीवन्त और प्रभावषाली हैं कि ये मन को मुग्ध कर लेती हैं।

भारत में चैहान हाड़ावंषीय राजपूतों का राज सर्वप्रथम 13वीं शताब्दी के मध्य में बूंदी में स्थापित हुआ। दो दषक बाद ही बूंदी राज्य की शाखा के रूप में कोटा के हाड़ा राज्य का निर्माण हुआ। इसी अंचल के पूर्वी भू-भाग में 18वीं शताब्दी के अंत में झालावाड़ राज्य की स्थापना हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजस्थान राज्य में कोटा, बूंदी एवं झालावाड़ हाड़ौती अंचल के तीन जिला केन्द्र थे। कालान्तर में कोटा और झालावाड़ जिले के कुछ हिस्सों को मिलाकर बारां को इस अंचल का चैथा जिला केन्द्र बनाया गया।

प्राचीनकाल में यह अंचल काफी उन्नत रहा था। मौर्य, मोखरी, कुषाण, शुंग और परमार वंष के राजाओं का यहां शासन रहा। इस क्षेत्र में प्राप्त षिलालेख और अन्य पुरातात्विक सामग्री हाड़ौती के ऐतिहासिक महत्व का संकेत देती हैं। इस अंचल की कतिपय प्रमुख ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, कलात्मक एवं पुरातात्विक विषेषताओं का संक्षिप्त विवरण जिलावार निम्नानुसार है:-

बूंदी

बून्दी का नामकरण जैता मीणा के दादा बूंदा मीणा के नाम से हुआ है।[6]

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

बम्बावदा के हाड़ा चैहान राव देवा ने विक्रम सम्वत् 1298 (1241 ई0) में जेता मीणा से बूंदा घाटी छीनकर बूँदी राज्य की स्थापना की थी।

राव राजा बेरसिंह द्वारा 1354 में निर्मित बून्दी का किला बून्दी शहर के उत्तर में 1426 फीट ऊंची पहाड़ी पर बना हुआ है। विदेशी पत्रकार किपलिंग ने इसे ‘‘फरिश्तों द्वारा निर्मित‘‘ बताया है। बून्दी के किले में महल में जलापूर्ति की विशेष व्यवस्था थी। राजपूत स्थापत्य शैली का अनुपम उदाहरण बूंदी के महल हैं।

राव राजा अनिरूद्ध सिंह (1681-1695) ने 1683 ई. में चबूतरे पर एक द्विमंजिला छतरी का निर्माण करवाया था। यह छतरी 84 खम्भों पर टिकी हुई है। इसे चैरासी खम्भा छतरी कहा जाता है। इसमें शिवलिंग भी अवस्थित है।

नवल सागर, बून्दी किले से कटोरे के आकार की दिखायी देने वाली प्राकृतिक झील है। झील में पानी की आवक के लिए रियासत काल से ही नालों का निर्माण किया गया है। झील के मध्य वरूण महादेव का मन्दिर है। झील के एक किनारे तन्त्र विद्या पर आधारित विशालकाय गजलक्ष्मी की मूर्ति स्थित है।

बून्दी राजमहल में स्थित चित्रशाला यहां का प्रमुख आकर्षण है। चित्रषाला में रागमाला, रासमाला एवं राधाकृष्ण के दृश्य प्रमुख है। यह विषिष्ट चित्रषैली बूंदी चित्रषैली के नाम से विख्यात है।

बून्दी के उत्तरी द्वार के बाहर जैत सागर झील है। इस झील की लम्बाई 4 कि.मी. है। इसके एक किनारे पर सुख महल है जिसका निर्माण राव राजा विष्णु सिंह ने 1773 ई. में करवाया था।

बूंदी की राजकुमारी सलेह कुंवर जो कि हाड़ी रानी के नाम से विख्यात है, के आत्मबलिदान की गाथा विष्वविख्यात है।

बून्दी बावड़ियों के कारण विशेष प्रसिद्ध है। बून्दी की प्रमुख बावड़ियों के नाम है - राम जी की बावड़ी, रानी जी की बावड़ी, गोविन्दपुर की बावड़ी सुखी बावड़ी, मनोहर जी की बावडी, आदिनाथ महादेव की बावड़ी, धाभाई जी का कुण्ड, गुलाब बावड़ी, सिसोदिया जी की बावड़ी, पुरूषोत्तम की बावड़ी, ठण्डी बावड़ी, श्याम बावड़ी, व्यास बावड़ी, भिश्तियों की बावड़ी, नाहरघूसे की बावड़ी, बालचन्द पाड़ा की बावड़ी आदि।

इन बावड़ियों में बून्दी शहर के मध्य में स्थित 46 मीटर गहरी ‘रानी जी की बावड़ी’ अत्यंत प्रसिद्ध है। इसका निर्माण रावराजा अनिरूद्ध सिंह की रानी नाथावत ने 1699 ई. में करवाया था।

बून्दी के शासकों ने प्रसिद्ध केषवराय जी का मन्दिर 1703 ई. में बनवाया था। यही स्थान केषवराय पाटन के नाम से जाना जाता है। यह स्थान प्राचीन ऐतिहासिक महत्व का है। यहां पाण्डवों द्वारा अज्ञातवास लेने का भी उल्लेख मिलता है।

केषवराय पाटन में जैन मुनि सुव्रतनाथ का अतिषय केन्द्र भी है, जो इस स्थान को प्रसिद्धि दिलाता है।

बाणगंगा नदी के तट पर के केदारेष्वर मन्दिर मंे बूंदी राज्य की स्थापना से पहले का बम्बावदा के शासक विजयपाल देव का षिलालेख भी विद्यमान है।

सुप्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल मिश्रण बूंदी के राज्यकवि थे। इन्होंने वंषभास्कर की रचना कर बूंदी राज्य का इतिहास लिखा।

सूर्यमल मिश्रण के पुत्र मुरारीदान ने वंष समुच्चय और ड़िंगलकोष की रचना की।

महाकवि बिहारी अपने जीवन के आखरी दिनों में बूंदी रहे थे।[7]

कोटा

बूंदी के राजकुमार जैतसिंह ने विक्रम सम्वत् 1321 (1264 ई0) में कोट्या (कोटिया) भील को परास्त करके अकेलगढ़ व कोटा पर अधिकार किया।

भीलों के नेता कोट्या की स्मृति में एक पत्थर स्थापित किया तथा उसके नाम पर अपनी इस नयी बस्ती का नाम कोटा रखा।

शाहजहां ने 1631 ई. में फरमान जारी कर कोटा राज्य को स्वतंत्र राज्य की मान्यता दी। माधोसिंह यहाँ के प्रथम शासक बने। कोटा रियासत को मुगल सम्राट ने 9 परगने और दिये।

कोटा क्षेत्र में प्रस्तर युग के आरम्भ से ही सभ्यता के चिह्न उपलब्ध हुए हैं।

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |
|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||
| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

तीसरी शताब्दी ई. के मौखरी शासकों के चार अभिलेख यूपस्तंभों पर उत्कीर्ण हैं जिनसे उस क्षेत्र में सम्पन्न हुए यज्ञों का विवरण मिलता है।

चारचैमा ग्राम में एक अत्यन्त प्राचीन षिवालय है। इसमें उत्कीर्ण दो गुप्तकालीन षिलालेख हैं जिनमें षिव की स्तुति मिलती है।

एक षिलालेख इस क्षेत्र में बौद्धधर्म के प्रभाव की जानकारी देता है। एक प्राचीन प्रस्तर-लेख में नागवंषीय सामन्त देवदत्त द्वारा एक मंदिर और संघाराम बनवाने की बात कही गई है।

कोटा गढ़ की नींव 1264 ई. में चर्मण्यवती के दाहिने तट पर बूंदी के राजकुमार जैतसिंह ने रखी। 1631 में माधोसिंह ने स्वतंत्र शासक बनाने की घोषणा के साथ ही कोटा गढ़ में महलों, परकोटों का निर्माण प्रारम्भ हुआ।

कोटा में स्थित भगवान मथुराधीष जी की प्रतिमा को औरंगजेब के अत्याचारों से बचाने के लिए 1669 ई. में बूंदी लाया गया और बाद में सन् 1744 ई. में भगवान मथुराधीष जी का कोटा में स्थापित कराया गया। यह मंदिर वल्लभ वैष्णव सम्प्रदाय का प्रमुख मंदिर है।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में क्रान्तिकारियों ने कोटा के पाॅलिटिकल एजेन्ट मेजर बर्टन व उसके पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया और पूरे शहर पर अधिकार कर लिया। 6 माह तक कोटा में क्रान्तिकारियों का शासन रहा। अंग्रेजों ने पी.ई. राबटर््स ने नेतृत्व में कोटा के विरूद्ध बहुत बड़ी सेना भेजी तब जाकर क्रान्तिकारियों से कोटा को मुक्त कराया जा सका।

हाड़ौती संभाग की कला इतिहास एवं संस्कृति के संरक्षण के लिए कोटा के महाराव भीमसिंह-द्वितीय द्वारा कोटा के प्राचीन गढ़ में 30 मार्च 1970 में राव माधोसिंह संग्रहालय की स्थापना की गई।

कोटा के बूढ़ातीत ग्राम में प्राचीन सूर्य मन्दिर है। 50 फुट ऊँचा यह मन्दिर 9वीं शताब्दी का माना जाता है।

कोटा से 50 कि.मी दूरी पर दर्रा घटी मंे सफेद बालुआ पत्थर के स्तम्भों पर निर्मित भीमचैरी का षिवालय हैं। मान्यता है कि पाण्डव इस श्रेत्र मे रहे थे। यहाँ से प्राप्त झलरी वादक षिला पट्टिका (तंत्रिका पट्टिका) सम्पूर्ण हाड़ौती अंचल में अनूठी है। मकरमुख व लताओं से अलंकृत इस पट्टिका में एक व्यक्ति को वाद्य यंत्र बजाते हुये दिखाया गया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका प्रदर्षन हो चुका है। [8]

कोटा से 22 कि.मी. की दूरी पर स्थित गैपरनाथ षिवालय पर्यटन और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह मन्दिर चम्बल नदी की 300 फुट गहरी घाटी में विषाल षिलाखण्ड पर स्थित है। इसका निर्माण काल 5वीं से 8वीं शताब्दी के मध्य माना गया है। यहाँ शैलचित्र भी प्राप्त हुए हैं, जो इसकी प्राचीनता के द्योतक हैं। यहाँ के झरने विषेष आकर्षण के केन्द्र हैं।

मुकन्दरा पर्वत श्रेणी में कोटा से 50 कि.मी. की दूरी पर स्थित दरा राष्ट्रीय जीव अभयारण्य सौन्दर्यमयी प्राकृतिक छटा के साथ वन्यजीवों के विचरण एवं पर्यटकों के मनोरंजन हेतु विषेष आकर्षण का केन्द्र है।

कोटा का दषहरा भारत में सर्वाधिक प्राचीन है। यह परम्परा 15वीं शताब्दी से निरन्तर चली आ रही है। यह उत्सव 20 दिन तक चलता है।

हाड़ौती क्षेत्र में कोटा जिले के सांगोद का न्हाण काफी प्रसिद्ध है। न्हाण का प्रचलन 9वीं शताब्दी से माना गया है। इसमें न रंग होता है, न पानी व न गुलाल। विभिन्न देवताओं की पूजा के बाद ब्रह्माणी माता की पूजा होती है। रातभर सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं।

बडवा-यूप स्तम्भ लेख ब्राह्मी लिपि मे अंकित 238 ई. के हैं। ये अभिलेख मौखरी वंष के है और ये कोटा के संग्रहालय मंे संरक्षित है। हाड़ौती मंे ये अवषेष वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के प्रतीक है।

कन्सुआ मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध कर्णेष्वर महादेव का निर्माण वि.सं. 795 (738 ई.) में राजा षिवगुण मौर्य ने करवाया था। मन्दिर के बाहरी भाग मंे कुटिल ब्राह्मी लिपि मंे षिलालेख है।

कोटा नगर के मध्य स्थित किशोर सागर झील का निर्माण 1346 ई. में कराया। झील के मध्य ही जगमन्दिर महल स्थित है। नाव द्वारा जग मन्दिर तक पहुँचा जा सकता है। चम्बल उत्सव के समय यह महल विषेष आकर्षण का केन्द्र रहता है।

राज्य प्राच्य प्रतिष्ठान कोटा में कई दुर्लभ ग्रन्थ संग्रहीत है। ताड़पत्र पर लिपिबद्ध 168 पत्र ग्रन्थ तेलगू में संग्रहीत है। भोजपत्र पर लिखित दुर्गा सप्तषती की पाण्डुलिपि हैं।

बारां

बारां जिले का गठन 10 अप्रेल 1991 को किया गया। इससे पूर्व यह क्षेत्र कोटा जिले के अन्तर्गत रहा। इस जिले में प्राचीनकालीन समृद्ध इतिहास के चिह्न मिलते हंै।

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

अटरू तहसील के शेरगढ़ कस्बे में प्राप्त एक षिलालेख इस क्षेत्र में व्याप्त बौद्ध धर्म के संकेत देता है। विक्रम संवत् 870 के इस संस्क्ृत लेख में नागवंषीय सामन्त देवदत्त द्वारा एक मंदिर और संघाराम बनवाने की बात कही गई है। इसके लेखक जज्जक और उत्कीर्णक चणक थे।

यहां से एक 10वीं शताब्दी का संस्कृत षिलालेख भी प्राप्त हुआ है, जिसमें नागवंषीय राजा मलयवर्मन के विजयोत्सव का उल्लेख हैे।

14वीं-15वीं शताब्दी में यहां सोलंकी राजपूतों का शासन रहा।[9]

शाहबाद का किला बारां से 80 कि.मी. की दूरी पर है। इस किले का निर्माण 1521 ई. में (वि.सं.1577) में चैहान वंश के धान्धेल राजपूत मुकुटमणि देव द्वारा बनवाया गया था।

बारां जिले में सीताबाड़ी प्रमुख पर्यटक एवं ऐतिहासिक स्थल है। ऐसी लोकमान्यता है कि सीता माता अपने वनवास काल मेंें इस स्थान पर रही थी। लवकुश का जन्म स्थान भी यही माना जाता है।

यहां प्रतिवर्ष सहरिया मेला लगता है। यह मेला वैषाख पूर्णिमा से ज्येष्ठ अमावस्या तक लगता है जिसमें आस-पास के क्षेत्रों से बहुत बड़ी संख्या में भक्तगण इकट्ठा होते है और वाल्मीकि के मंदिर में प्रसाद चढ़ाते है।

शेरगढ़ का किला अटरू तहसील में परवन नदी के तट पर छोटी पहाड़ी पर स्थित है। 790 ई. का यहां पर एक पाषाण अभिलेख मिला है जो यहां की महत्वपूर्ण धरोहर है।

लाल पत्थर से निर्मित नाहरगढ़ किला प्रभावशाली स्थापत्य कला का प्रमाण है। मुगल काल का यह सुन्दर उदाहरण है।

परवन की सहायक नदी विलासी नदी के किनारे विलासगढ़ के प्राचीन गढ़ के अन्दर मन्दिरों की नगरी है जो प्रागैतिहासिक काल से 13वीं शताब्दी तक के प्रमाण संजोये हुये हैं।

विलासगढ़ का कन्यादह, चारखम्भा विष्णुमन्दिर, जैन मन्दिर, दीयों की चांदनी प्रमुख है। यहाँ पर प्रागैतिहासिक शैलचित्र भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

कपिलधारा/प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त एक सुहावना पर्यटन स्थल है। यहां की पहाड़ी में गोमुख से सदैव पानी गिरता रहता है। यहां पर भी प्रागैतिहासिक शैलचित्रों की प्रचुरता है।

छीपाबड़ौद तहसील में सारथल में परवन नदी के तट पर प्राचीन स्थापत्य कला एवं संस्कृति के प्रमाण के रूप में भीमगढ़-काकुनी का विषेष महत्व है। 1970 से यह स्थान संरक्षित स्मारक है।

सोरसन गांव सोरसन माताजी, सोरसन वन्य जीव अभयारण्य एवं प्रागैतिहासिक शैलचित्रों के लिए प्रसिद्ध है। यहां पर प्रसिद्ध ब्रह्माणी माता का मन्दिर है। परम्परागत जनश्रुति के अनुसार सोरसन माताजी की अखण्ड ज्योति गत 400 वर्षों से प्रज्ज्वलित है। शिवरात्रि पर प्रति वर्ष यहां मेला लगता है।

सारेसन वन्यजीव अभयारण्य लगभग 41 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में फैला हुआ है। परवन नदी के किनारे लम्बाई में यह अभयारण्य 17 कि.मी. फैला हुआ है।

रामगढ़ का षिव मन्दिर भण्डदेवरा के नाम से प्रसिद्ध है। यहां पर प्राचीन शैव एवं तांत्रिक संप्रदाय से संबंधित मूर्तियां है। इनमें अधिकांश मिथुन मूर्तियां होने के कारण स्थान का नाम भण्डदेवरा कहलाता है।

रामगढ़ के इस घेरे में माला की तलाई, पुष्कर सागर, नोलखा तालाब, रावण की तलाई, बावड़ियां, कुए, कुण्ड, मठ, चबूतरे, साधु-सन्तों की समाधियां, गुफाएं, अन्नपूर्णा एवं कृष्णायी माता का मन्दिर, तांत्रिक युगीन सभ्यता का प्राचीन गढ़ आदि आकर्षण के केन्द्र हैं।

झालावाड़

झालावाड़ राज्य की स्थापना 1791 ई. में कोटा राज्य के दीवान एवं प्रमुख सरदार झाला जालिम सिंह द्वारा उम्मेदपुरा सैनिक छावनी के रूप में की गई।

1838 ई. में इसे कोटा से अलग स्वतंत्र राज्य का दर्जा दिया गया। जालिम सिंह के पौत्र मदन सिंह को महाराजा की पदवी दी गई।

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |
|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||
| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

झालावाड़ किले का निर्माण महाराजा मदन सिंह ने 1838 से 1845 ई. में पूर्ण किया था। गढ़ के जनाना खास में दीवार पर फ्रेस्को पेंटिंग एवं काँच की कारीगरी विशेष उल्लेखनीय है।

चन्द्रभागा नदी के तट पर प्राचीन चन्द्रावती नगरी के भी अवशेष मिले हैं। यहीं पर चन्द्रभागा मन्दिर समूह भी है। इन मन्दिरों का काल 7वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक का है।

झालरापाटन के निकट चन्द्रभागा नदी के तट पर 7वीं शताब्दी में राजा विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी परमार राजा चन्द्र सेन ने चन्द्रावती नगर को बसाया।

उत्तर के दक्षिण भारत के मध्य चन्द्रावती प्रमुख व्यापारिक केन्द्र रहा। झालरापाटन तेल व कपास के व्यापार का प्रमुख केंद्र था। [10]

17वीं शताब्दी में औरंगजेब ने इस नगरी को ध्वस्त कर दिया। इसके 100 वर्ष बाद झाला जालिम सिंह ने चन्द्रावती नगरी के ध्वंसावषेषों से झालरापाटन बनाया।

सूर्य मन्दिर झालरापाटन का प्रसिद्ध मंदिर है। मन्दिर का निर्माण 11वीं शताब्दी में किया गया। इसकी ऊंचाई 100 फिट है। मंदिर में पद्मनाभ की प्रतिमा की पूजा होती है जो कि गर्भगृह में स्थापित है।अतः यह मन्दिर पद्मनाभ मन्दिर के नाम से भी प्रसिद्ध है। पद्मनाभ की मूर्ति 18वीं-19वीं शताब्दी की है।

भवानी नाट्यशाला का निर्माण महाराजा भवानी सिंह (1897-1929) द्वारा 1929 ई. में किया गया। इसका निर्माण नाटकों के मंचन एवं सांस्कृतिक घटनाओं की अभिव्यक्ति के लिए किया गया। राज्य की आधुनिक तर्ज पर बनी यह बहुत पुरानी नाट्यषाला है।

गागरोन का दुर्ग आहु और कालीसिन्ध नदी के संगम पर स्थित है। किले का निर्माण काल 8वीं से 14वीं शताब्दी तक का है।

चैदहवीं शताब्दी में यहां के षासक चैहान प्रताप राव खींची (1359 ई.-1420 ई.) ने राज्य त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया और रामानन्द के षिष्यश्बनश्गये। ये संत पीपाजी के नाम से विख्यात हुए। यही पर सन्त पीपाजी आश्रम है।

इसी दुर्ग में प्रसिद्ध सूफी सन्त मीठे शाह की दरगाह भी है।

मन्दिर स्थापत्य एवं धार्मिक महत्व की दृष्टि से चांदखेड़ी के 17वीं शताब्दी के जैन मन्दिरों का अत्यधिक महत्व है।

गंगधार का किला झालावाड़ से 120 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह 480 ई. का शिलालेख प्राप्त हुआ है। यह लेख झालावाड़ संग्रहालय में प्रदर्शित है।

झालावाड़ जिले के कोलवी, हाथियागोड़, विनायगा में बौद्ध गुफाएं एवं बौद्ध स्तूप हैं जो स्थापत्य कला एवं शैलकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इन अवशेषों से राजस्थान में बौद्ध धर्म के अस्तित्व का भी संकेत मिलता है।

कोलवी में लगभग 50 गुफाएं हैं। इनमें भिक्षुकों के लिए आवास, पूजा स्थल, स्तूप, बुद्धप्रतिमा का निर्माण पहाड़ी चट्टान की कटाई करके बनाये गये है। इन बौद्ध गुफाओं का समय 5वीं शताब्दी माना गया है।

कोलवी के अलावा हाथिया गौड़ के बिनायगा में भी बौद्ध गुफाएं मिलती है। यहां लगभग 20 गुफाएं है जो पहाड़ी की दक्षिण दिशा में स्थित है।

मंदसौर के शासक विष्ववर्मन के सचिव मयूराक्षक का वि.सं. 480 का लेख झालावाड़ जिले में गंगधार से मिला है। इनमे मयूराक्षक द्वारा देवी के विष्णुमन्दिर बनाये जाने का उल्लेख है। [2]

निष्कर्ष

राजस्थानी चित्रकला को बूंदी व कोटा चित्रशैली ने भी अनूठे रंगों से युक्त स्वर्मिण संयोजन प्रदान किया है। प्रारंभिक काल में राजनीतिक कारणों से बूंदी कला पर मेवाड़ शैली का प्रभाव स्पष्ट रुप से परिलक्षित होता है। इस स्थिति को स्पष्ट व्यक्त करने वाले चित्रों में रागमाला (१६२५ ई.) तथा भैरवी रागिनी उल्लेखनीय है। इस शैली का विकास राव सुरजन सिंह (१५५४-८५) के समय के आरम्भ हो जाता है। उन्होने मुगलों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था अत: धीरे-धीरे चित्रकला की पद्धति में एक नया मोड़ आना शुरु हो जाता है। दीपक राग तथा भैरव रागिनी के चित्र राव रतन सिंह (१६०७-३१) के समय में निर्मित हुए। राव रतन सिंह चूंकि जहाँगीर का कृपा पात्र था, तथा उसके बाद राव माधो सिंह के काल में जो शाहजहाँ के प्रभाव में था, चित्र कला के क्षेत्र में भी मुगल प्रभाव निरन्तर बढ़ता गया। चित्रों में बाग, फव्वारे, फूलों की कतार, तारों भरी राते आदि का समावेश मुगल ढंग से किया जाने लगा। भाव

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

सिंह (१६५८-८१) भी काव्य व कला प्रेमी शासक था। राग- रागिनियों का चित्रण इनके समय में हुआ। राजा अनिरुद्ध के समय दक्षिण युद्धों के फलस्वरुप बूंदी शैली में दक्षिण कला के तत्वों का सम्मिलित हुआ। बूंदी शैली के उन्नयन में यहाँ के शासक राव राजाराम सिंह (१८२१-८९) का अभूतपूर्व सहयोग रहा। बूंदी महल के ठछत्र महल' नामक प्रकोष्ठ में उन्होने भित्ति-चित्रो का निर्माण करवाया। बूंदी चित्रों में पटोलाक्ष, नुकीली नाक, मोटे गाल, छोटे कद तथा लाल पीले रंग की प्राचुर्यता स्थानीय विशेषताओं का द्योतक है जबकि गुम्बद का प्रयोग और बारीक कपड़ों का अंकन मुगली है। स्रियों की वेशगुषा मेवाड़ी शैली की है। वे काले रंग के लहगे व लाल चुनरी में हैं। पुरुषाकृतियाँ नील व गौर वर्ण में हृष्ट-पुष्ट हैं, दाढ़ी व मूँछो से युक्त चेहरा भारी चिबुक वाला है। वास्तुचित्रण प्रकृति के मध्य है। घुमावदार छतरियों व लाल पर्दो से युक्त वातायन बहुत सुन्दर प्रतीत होते हैं। केलों के कुज अन्तराल को समृद्ध करते हैं।

बूंदी चित्रों का वैभव चित्रशाला, बड़े महाराज का महल, दिगम्बर जैन गंदिर, बूंदी कोतवाली, अन्य कई हवेलियों तथा बावड़ियों में बिखरा हुआ है।कोटा में भी राजनीतिक स्वतंत्रता से नवीन शैली का आरम्भ होता है। वल्लभ सम्प्रदाय जिसका प्रभाव यहाँ १८ वीं शती के प्रारम्भिक चरण में पड़ा, में राधा कृष्ण का अंकन विशेष रुप से हुआ। परन्तु कोटा शैली अपनी स्वतंत्र अस्तित्व न रखकर बूंदी शैली का ही अनुकरण करती है। उदाहरणार्थ जालिम सिंह की हवेली में चित्रित नायिका हू-ब-हू बूंदी नायिका की नकल कही जा सकती है। आगे चलकर भी कोटा शैली बूंदी शैली से अलग न हो सकी। कोटा के कला प्रेमी शासक उम्मेद सिंह (१७७१-१८२०) की शिकार में अत्यधिक रुचि थी अत: उसके काल में शिकार से सम्बद्ध चित्र अधिक निर्मित हुए। आक्रामक चीता व राजा उम्मेद सिंह का शिकार करते हुए चित्र बहुत सजीव है। चित्रों में प्रकृति की सधनता जंगल का भयावह दृश्य उपस्थित करती है। कोटा के उत्तम चित्र देवताजी की हवेली, झालाजी की हवेली व राजमहल से प्राप्त होते हैं।

जयपुर शैली का विकास आमेर शैली से हुआ। मुगल शैली के प्रभाव का आधित्य इस शैली की विशेषता है। जयपुर के महाराजाओं पर मुगल जीवन तथा नीति की छाप विशेष रुप से रही है। अकबर के आमेर के राजा भारमल की पुत्री से विवाहोपरान्त सम्बन्धों में और प्रगाढ़ता आयी।[5]

शुरुआती चित्र परम्परा भाऊपुरा रैनबाल की छवरी, भारभल की छवरी (कालियादमन, मल्लयोद्धा), आमेर महल व वैराट की छतरियों में भित्तियों पर (वंशी बजाते कृष्ण) तथा कागजों पर प्राप्त होती है। बाद में राजा जयसिंह (१६२१-६७) तथा सवाई जयसिंह (१६९९-१७४३) ने इस शैली को प्रश्रय दिया। राजा सवाई जयसिंह ने अपने दरबार में मोहम्मद शाह व साहिबराम चितेरो को प्रश्रय दिया। इन कलाकारों ने सुन्दर व्यक्ति, चित्रों व पशु-पक्षियों की लड़ाई सम्बंधी अनेक बड़े आकार के चित्र बनाए। सवाई माधो सिंह प्रथम (१७५०-६७) के समय में अलंकरणों में रंग न भरकर मोती, लाख व लकड़ियाँ की मणियों को चिपकाकर चित्रण कार्य हुआ। इसी समय माधोनिवास, सिसोदिनी महल, गलता मंदिर व सिटी पैलेस में सुन्दर भिति चित्रों का निर्माण हुआ। सवाई प्रताप सिंह (१७७९-१८०३) जो स्वयं पुष्टि मार्गी कवि थे, के समय में कृष्ण लीला, नायिका भेद, राग-रागिनी, ऋतुवर्णन, भागवतपुराण, दुर्गासप्तसती से सम्बंधित चित्र सृजित हुए। महाराज जगतसिंह के समय में पुण्डरीक हवेली के भित्ति चित्र, विश्व-प्रसिद्ध ठकृष्ण का गोवर्धन-धारण' नामक चित्र रासमण्डल के चित्रों का निर्माण हुआ। पोथीखाने के आसावरी रागिणी के चित्र व उसी मंडल के अन्य रागों के चित्रों में स्थानीय शैली की प्रधानता दिखाई देती है। कलाकार ने आसावरी रागिणी के चित्र में शबरी के केशों, उसके अल्प कपड़ों, आभूषणों और चन्दन के वृक्ष के चित्रण में जयपुर शैली की वास्तविकता को निभाया है। इसी तरह पोथीखाना के १७ वीं शताब्दी के ठभागवत' चित्रों में जो लाहोरे के एक खत्री द्वारा तैयार करवाये गये थे, स्थानीय विशेषताओं का अच्छा दिग्दर्शन है। १८ वीं शाताब्दी की ठभागवत' में रंगों की चटक मुगली है। चित्रों में द्वारिका का चित्रण जयपुर नगर की रचना के आधार पर किया गया है और कृष्ण-अर्जुन की वेषभूषा मुगली है। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जयपुर शैली पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ना शुरु हो जाता है। जयपुर शैली के चित्र गातिमय रेखाओं से मुक्त, शान्तिप्रदायक वर्णा में अंकित है। आकृतियाँ की भरभार होते हुए भी चेहरे भावयुक्त है। मुगल प्रभाव से चित्रों में छाया, प्रकाश व परदा का मुक्त प्रयोग हुआ है। आकृतियाँ सामान्य कद की हैं। आभूषणों में मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। स्रियों की वेशभूषा में भी मुगल प्रभाव स्पष्ट है। उनके अधोवस्र में घेरदार घाघरा ऊपर से बाँधा जाता है और पायजामा तथा छोटी ओढ़नी पहनाई जाती है जो मुगल परम्परा के अनुकूल है। पैरो में पायजेब व जुतियाँ है। चेहरों को चिकनाहट और गौरवर्ण फारसी शैली के अनुकूल है। वह अपने भाव मोटे अधरों से व्यक्त करती है। पुरुष के सिर पर पगड़ी,घेरदार चुन्नटी जामा, ढ़ीली मोरी के पाजामें, पैरों में लम्बी नोक की जूतियाँ हैं।[7]
आज भी जयपुर में हाथी-दाँत पर लघु चित्र व बारह-मासा आदि का चित्रण कर उसे निर्यात किया जाता है। भित्ति चित्रण परंपरा भी अभी अस्तित्व में है।[10]

संदर्भ

1) Dwivedi, Amitabh Vikram (2012). "The Status of Haroti: An Enquiry into Rajastani Language". मूल से 23 जुलाई 2018 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 23 July 2018.

|e-ISSN: 2319-8753, p-ISSN: 2347-6710| www.ijirset.com | Impact Factor: 8.118| A Monthly Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 12, Issue 1, January 2023 ||

| DOI:10.15680/IJIRSET.2023.1201079 |

2) "Bundi District Population Census 2011, Rajasthan literacy sex ratio and density". Census2011.co.in. मूल से 3 सितंबर 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2016-08-20.
3) ↑ "Uttar Pradesh in Statistics," Kripa Shankar, APH Publishing, 1987, ISBN 9788170240716
4) ↑ "Political Process in Uttar Pradesh: Identity, Economic Reforms, and Governance Archived 2017-04-23 at the Wayback Machine," Sudha Pai (editor), Centre for Political Studies, Jawaharlal Nehru University, Pearson Education India, 2007, ISBN 9788131707975
5) ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 23 सितंबर 2018 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 22 सितंबर 2018.
6) "Lonely Planet Rajasthan, Delhi & Agra," Michael Benanav, Abigail Blasi, Lindsay Brown, Lonely Planet, 2017, ISBN 9781787012332
7) ↑ "Berlitz Pocket Guide Rajasthan," Insight Guides, Apa Publications (UK) Limited, 2019, ISBN 9781785731990
8) हाड़ौती की जैन अभिलेख परम्परा Archived 2020-10-01 at the Wayback Machine
9) हाडौती के अल्पज्ञात खीची शिलालेख Archived 2020-09-24 at the Wayback Machine
10) 'राकेश' जी ने सिद्ध किया कि हाड़ौती केवल बोली नहीं, एक स्वतंत्र भाषा है।